International Journal of
Frontier Science and
Multidisciplinary Research (IJFSMR)

Vol 1, Issue 3, October-December 2026, 43–48
ISSN: 3139-647X

RESEARCH PAPER

साहित्य, समाज और पर्यावरणीय न्याय का अंतर्संबंध

डॉ. रुचिका जैन

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग दिगंबर जैन कॉलेज बड़ौत, बागपत (उत्तर प्रदेश

Corresponding Author: ruchikajaindjc@gmail.com

Abstract

पर्यावरणीय संकट केवल प्राकृतिक या तकनीकी समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता, सत्ता और संसाधनों के असमान वितरण से जुड़ा प्रश्न है। पर्यावरणीय न्याय की अवधारणा यह पूछती है कि पर्यावरणीय क्षति का बोझ किन समुदायों पर पड़ता है, निर्णय-प्रक्रिया में किसकी आवाज़ सुनी जाती है और किसकी पीड़ा को पहचान मिलती है। प्रस्तुत शोध आलेख साहित्य, समाज और पर्यावरणीय न्याय के पारस्परिक संबंध का गुणात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन है। इसमें छह चयनित साहित्यिक एवं वैचारिक कृतियों का विषयगत विश्लेषण किया गया है तथा ग्लोबल विटनेस द्वारा प्रकाशित भूमि एवं पर्यावरण रक्षकों पर हिंसा के आँकड़ों (2019–2024) को संदर्भ-आधार के रूप में रखा गया है। परिणाम दर्शाते हैं कि चयनित कृतियों में विस्थापन, कृषि संकट, जलवायु-जनित प्रवासन, औपनिवेशिक दोहन और हाशिये के समुदायों की आवाज़ जैसे विषय बार-बार उभरते हैं, और ये विषय सामाजिक आँकड़ों में दिखने वाली पर्यावरणीय हिंसा से मेल खाते हैं। निष्कर्ष यह है कि साहित्य उस 'धीमी हिंसा' को दृश्य बनाता है जो आँकड़ों और नीतियों में प्रायः अदृश्य रह जाती है, और इस प्रकार पर्यावरणीय न्याय के सामाजिक विमर्श को संवेदनात्मक एवं नैतिक आधार प्रदान करता है।

KEYWORDS:
पर्यावरणीय न्याय, साहित्य, पारिस्थितिक आलोचना, धीमी हिंसा, विस्थापन, जलवायु परिवर्तन

ARTICLE HISTORY
Received: 05 November 2026
Revised: 10 November 2026
Accepted: 15 November 2026
Published: 20 November 2026

CITATION
डॉ. रुचिका जैन., (2026). साहित्य, समाज और पर्यावरणीय न्याय का अंतर्संबंध. *International Journal of Frontierscience and Multidisciplinary Research (IJFSMR)*, 1(3), 43–48. https://doi.org/10.71371/ijfsmr.1343-48

प्रस्तावना

पर्यावरणीय संकट आज मानव समाज के सम्मुख सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक है, किंतु उसके प्रभाव सभी लोगों पर समान रूप से नहीं पड़ते। जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल की छठी मूल्यांकन रिपोर्ट के अनुसार जिन समुदायों और क्षेत्रों ने ऐतिहासिक रूप से सबसे कम उत्सर्जन किया है, वे प्रायः जलवायु-प्रभावों के प्रति सबसे अधिक असुरक्षित हैं *(आईपीसीसी, 2022)*। इससे स्पष्ट होता है कि पर्यावरण का प्रश्न अनिवार्य रूप से समाज, राजनीति और न्याय के प्रश्नों से जुड़ा है।

'पर्यावरणीय न्याय' की अवधारणा इसी जुड़ाव को व्यक्त करती है। श्लॉसबर्ग *(2013)* ने इसके तीन परस्पर संबद्ध आयाम बताए हैं: पर्यावरणीय लाभ और हानि का न्यायपूर्ण वितरण, निर्णय-प्रक्रिया में सहभागिता, तथा विविध समुदायों की पहचान और सम्मान की मान्यता। वॉकर *(2012)* ने इस अवधारणा के प्रमाणों और राजनीतिक आयामों का विस्तृत विश्लेषण किया है, जबकि श्लॉसबर्ग एवं कॉलिन्स *(2014)* ने इसे जलवायु न्याय के विमर्श

Copyright © 2026 the Author (s). This open access article is distributed under Creative Commons Attribution License 4.0 (CC BY).

तक विस्तृत किया।

वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय संघर्षों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऐसे आंदोलन प्रायः खनन, बाँध, वनों की कटाई और जल-स्रोतों पर नियंत्रण जैसे मामलों में स्थानीय समुदायों तथा बड़ी आर्थिक शक्तियों के टकराव से जन्म लेते हैं *(*मार्टिनेज़-आलियर एवं अन्य, *2016;* शाइडेल एवं अन्य, *2020)*। रॉब निक्सन *(2011)* ने 'धीमी हिंसा' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें प्रदूषण, विस्थापन और पारिस्थितिक क्षरण जैसी क्षति धीरे-धीरे, दृश्य नाटकीयता के बिना, गरीबों और वंचितों के जीवन को नष्ट करती है।

पर्यावरणीय अन्याय का संबंध नस्ल, जाति, वर्ग और उपनिवेशवाद की विरासत से भी है। पुलिडो *(2017)* पर्यावरणीय नस्लवाद को नस्लीय पूँजीवाद और राज्य-स्वीकृत हिंसा के संदर्भ में देखती हैं, और व्हाइट *(2018)* बसने वाले उपनिवेशवाद को मूल निवासी समुदायों के विरुद्ध पर्यावरणीय अन्याय का आधार बताते हैं। भारत के संदर्भ में रंगराजन एवं शिवरामकृष्णन *(2012)* के संपादित ग्रंथ तथा बाविस्कर *(2020)* का दिल्ली संबंधी अध्ययन दर्शाते हैं कि प्रकृति, भूमि और साझा संसाधनों पर नियंत्रण सामाजिक असमानता से गहराई से जुड़ा रहा है।

साहित्य इस सामाजिक यथार्थ को समझने का एक विशिष्ट माध्यम है। क्लार्क *(2011)* ने साहित्य और पर्यावरण के संबंध की रूपरेखा प्रस्तुत की है, और गैरार्ड *(2014)* द्वारा संपादित हैंडबुक पारिस्थितिक आलोचना के विस्तृत क्षेत्र को दिखाती है। उत्तर-औपनिवेशिक पारिस्थितिक अध्ययनों ने विशेष रूप से यह प्रश्न उठाया कि उपनिवेशवाद, विकास और वैश्विक असमानता ने साहित्य में प्रकृति के चित्रण को किस प्रकार आकार दिया है *(*डीलॉफ़ी एवं हैंडली, *2011;* ह्यूगन एवं टिफ़िन, *2015)*। हाइज़ *(2016)* ने विलुप्ति की कथाओं के माध्यम से दिखाया कि सांस्कृतिक कल्पना पर्यावरणीय मूल्यों को आकार देती है।

अमिताव घोष *(2016)* ने 'द ग्रेट डिरेंजमेंट' में तर्क दिया कि आधुनिक साहित्यिक कल्पना जलवायु संकट की विराटता को आत्मसात करने में काफ़ी हद तक विफल रही है, और यह विफलता औपनिवेशिक-पूँजीवादी विकास-दृष्टि से जुड़ी है। उनकी बाद की कृतियाँ 'गन आइलैंड' *(2019)* और 'द नटमेग्स कर्स' *(2021)* जलवायु-जनित प्रवासन तथा उपनिवेशवादी दोहन के संबंध को साहित्यिक एवं ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार साहित्य न केवल पर्यावरण का वर्णन करता है, बल्कि पर्यावरणीय अन्याय के कारणों पर प्रश्न भी उठाता है।

भारतीय भाषाओं के समकालीन साहित्य में भी ऐसे स्वर मुखर हुए हैं। संजीव *(2015)* का उपन्यास 'फाँस' विदर्भ क्षेत्र के किसानों की आत्महत्या और कृषि-संकट को केंद्र में रखता है, हंसदा सौवेंद्र शेखर *(2015)* की कहानियाँ संथाल समुदाय के जीवन और अस्मिता के प्रश्न उठाती हैं, तथा अरुंधति रॉय *(2011)* के निबंध मध्य भारत में खनन, आदिवासी भूमि और राज्य-हिंसा के प्रश्नों से जूझते हैं। ये कृतियाँ उन समुदायों की आवाज़ को सामने लाती हैं जिन्हें मुख्यधारा के विकास-विमर्श में प्रायः अनदेखा किया जाता है।

इसके बावजूद शोध-साहित्य में एक अंतराल दिखाई देता है। पारिस्थितिक आलोचना प्रायः प्रकृति-चित्रण और पाठ-विश्लेषण पर केंद्रित रहती है, जबकि पर्यावरणीय न्याय का अध्ययन अधिकतर समाजशास्त्र, राजनीति-विज्ञान और भूगोल में होता है। इन दोनों क्षेत्रों को जोड़कर यह समझने के प्रयास कम हुए हैं कि साहित्यिक पाठ किस प्रकार सामाजिक आँकड़ों द्वारा दर्ज असमानता को अनुभव और अर्थ प्रदान करते हैं, विशेषकर हिंदी एवं भारतीय संदर्भ में। यही इस अध्ययन की आवश्यकता का आधार है।

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य साहित्य, समाज और पर्यावरणीय न्याय के अंतर्संबंध का संतुलित एवं तर्कसंगत विश्लेषण करना है। मुख्य प्रश्न हैं *:* चयनित कृतियों में पर्यावरणीय अन्याय किन रूपों में चित्रित होता है, ये चित्रण पर्यावरणीय हिंसा के उपलब्ध सामाजिक आँकड़ों से किस प्रकार संबद्ध हैं, और साहित्य पर्यावरणीय न्याय के विमर्श में क्या भूमिका निभाता है। आगे कार्यप्रणाली, परिणाम तथा चर्चा एवं निष्कर्ष खंडों में इन प्रश्नों पर विचार किया गया है।

कार्यप्रणाली

यह अध्ययन गुणात्मक, समीक्षात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें साहित्यिक पाठों के विषयगत विश्लेषण को पर्यावरणीय हिंसा से संबंधित प्रकाशित आँकड़ों के साथ जोड़ा गया है। अध्ययन में कोई प्राथमिक सर्वेक्षण या साक्षात्कार नहीं किया गया*;* सभी सामग्री प्रकाशित एवं सार्वजनिक रूप से उपलब्ध द्वितीयक स्रोतों से ली गई है। यह दोहरा आधार इसलिए चुना गया कि साहित्य अनुभव और अर्थ का, तथा आँकड़े विस्तार और प्रवृत्ति का बोध कराते हैं।

अध्ययन के चार उद्देश्य हैं। प्रथम, पर्यावरणीय न्याय के सैद्धांतिक आयामों की समकालीन समीक्षा करना। द्वितीय, चयनित साहित्यिक एवं वैचारिक कृतियों में पर्यावरणीय अन्याय के प्रमुख विषयों की पहचान करना। तृतीय, भूमि एवं पर्यावरण रक्षकों पर हिंसा के वैश्विक आँकड़ों की प्रवृत्ति का

Copyright © 2026 the Author (s). This open access article is distributed under Creative Commons Attribution License 4.0 (CC BY).

वर्णन करना। चतुर्थ, साहित्यिक विषयों और सामाजिक आँकड़ों के संबंध की व्याख्या करना।

साहित्यिक कृतियों का चयन उद्देश्यपरक *(purposive)* नमूना-पद्धति से किया गया। चयन के मानदंड थे *:* कृति *2011* से *2021* के बीच प्रकाशित हो*;* उसमें विस्थापन, कृषि-संकट, जलवायु, उपनिवेशवादी दोहन या संसाधनों पर संघर्ष जैसे विषय प्रमुख हों*;* तथा विधाओं *(*उपन्यास, कहानी, निबंध*)* और भाषाओं *(*हिंदी एवं अंग्रेज़ी*)* में विविधता हो। इस आधार पर घोष की तीन कृतियाँ, संजीव का 'फाँस', शेखर का कहानी-संग्रह तथा रॉय के निबंध चुने गए।

सैद्धांतिक ढाँचे के रूप में श्लॉसबर्ग *(2013)* के तीन आयाम, अर्थात् वितरणात्मक न्याय, सहभागिता तथा मान्यता, और निक्सन *(2011)* की 'धीमी हिंसा' की अवधारणा का प्रयोग किया गया है। इन्हें विश्लेषण की कसौटी के रूप में रखा गया है, ताकि प्रत्येक कृति में चित्रित अन्याय को इनमें से किसी एक या अधिक आयाम के अंतर्गत समझा जा सके, तथा पाठ के बारे में निष्कर्ष एक स्पष्ट वैचारिक आधार पर टिके रहें।

विश्लेषण के लिए विषयगत विश्लेषण *(thematic analysis)* की विधि अपनाई गई। प्रत्येक कृति के केंद्रीय सरोकारों को पढ़कर उन्हें पाँच विषय-श्रेणियों में संगठित किया गया *:* विस्थापन एवं भूमि-अधिकार, कृषि एवं आजीविका संकट, जलवायु-जनित असुरक्षा एवं प्रवासन, औपनिवेशिक दोहन की ऐतिहासिक विरासत, तथा हाशिये के समुदायों की आवाज़ एवं प्रतिरोध। विश्लेषण का उद्देश्य कृतियों की साहित्यिक गुणवत्ता का मूल्यांकन नहीं, बल्कि उनमें पर्यावरणीय न्याय के प्रश्नों की पहचान है।

सामाजिक आँकड़ों के संदर्भ के रूप में ग्लोबल विटनेस की वार्षिक रिपोर्टों में प्रकाशित भूमि एवं पर्यावरण रक्षकों की हत्या अथवा गुमशुदगी के आँकड़े लिए गए हैं। इनके लिए *2019* से *2024* की अवधि चुनी गई, जो पाँच-छह वर्ष की तुलनात्मक श्रृंखला देती है। भारत और एशिया के संदर्भ में *2012* से *2024* के संचयी आँकड़े भी उपयोग किए गए हैं। यह श्रृंखला पर्यावरणीय संघर्षों की तीव्रता का एक सांकेतिक, न कि पूर्ण, सूचक मानी गई है।

साहित्य-समीक्षा के लिए *2011* से *2026* के बीच प्रकाशित पुस्तकों, संपादित ग्रंथों, समीक्षित शोध-पत्रिकाओं और प्रतिष्ठित संस्थाओं की रिपोर्टों का चयन किया गया। चयन में विषय की प्रासंगिकता, प्रकाशन की विश्वसनीयता तथा सैद्धांतिक अथवा अनुभवजन्य योगदान को आधार बनाया गया। साहित्यिक कृतियों के लिए मूल पाठ को प्राथमिक स्रोत तथा उन पर लिखे गए आलोचनात्मक एवं सैद्धांतिक अध्ययनों को द्वितीयक स्रोत के रूप में उपयोग किया गया।

विश्लेषण की विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए कुछ सावधानियाँ रखी गई हैं। एक ही विषय पर विभिन्न विधाओं और भाषाओं की कृतियों की तुलना की गई, साहित्यिक निष्कर्षों को सैद्धांतिक साहित्य तथा आँकड़ों से परखा गया, और जहाँ शोधकर्ता की व्याख्या अनुमान पर आधारित है, वहाँ उसे स्पष्ट रूप से अनुमान के रूप में लिखा गया है। चूँकि सामग्री पूर्णतः प्रकाशित है, अतः अध्ययन में किसी व्यक्ति की निजी सूचना के उपयोग से संबंधित नैतिक जटिलता उत्पन्न नहीं हुई।

अध्ययन की कुछ सीमाएँ हैं। पहली, छह कृतियों का नमूना छोटा है, इसलिए निष्कर्षों को समस्त साहित्य पर लागू नहीं किया जा सकता। दूसरी, अनूदित अथवा अंग्रेज़ी में लिखित कृतियों का विश्लेषण भाषा-विशिष्ट सूक्ष्मताओं को पूरी तरह नहीं पकड़ सकता। तीसरी, ग्लोबल विटनेस के आँकड़े केवल प्रलेखित मामलों को दर्शाते हैं और वास्तविक संख्या अधिक हो सकती है। चौथी, साहित्य और सामाजिक आँकड़ों के बीच संबंध सहसंबंधात्मक एवं व्याख्यात्मक है, कार्य-कारण संबंधी नहीं।

परिणाम

चयनित छह कृतियों के विषयगत विश्लेषण में पाँच विषय-श्रेणियाँ बार-बार उभरती हैं *:* विस्थापन एवं भूमि-अधिकार, कृषि एवं आजीविका संकट, जलवायु-जनित असुरक्षा एवं प्रवासन, औपनिवेशिक दोहन की विरासत, तथा हाशिये की आवाज़ और प्रतिरोध। प्रत्येक कृति में एक से अधिक विषय मिलते हैं, जिससे यह संकेत मिलता है कि लेखक पर्यावरणीय अन्याय को अलग-अलग समस्याओं के रूप में नहीं, बल्कि परस्पर जुड़ी संरचना के रूप में देखते हैं।

तालिका *1* में चयनित कृतियों तथा उनके प्रमुख पर्यावरणीय न्याय-संबंधी विषयों का सार प्रस्तुत है। घोष की तीनों कृतियाँ जलवायु तथा उपनिवेशवादी इतिहास के संबंध पर बल देती हैं, जबकि संजीव, शेखर और रॉय की कृतियाँ भारत के भीतर किसानों, आदिवासी समुदायों और भूमि-संघर्षों के अनुभवों को केंद्र में रखती हैं। इस प्रकार अध्ययन में वैश्विक और स्थानीय, दोनों स्तरों के सरोकार सम्मिलित हैं।

Copyright © 2026 the Author (s). This open access article is distributed under Creative Commons Attribution License 4.0 (CC BY).

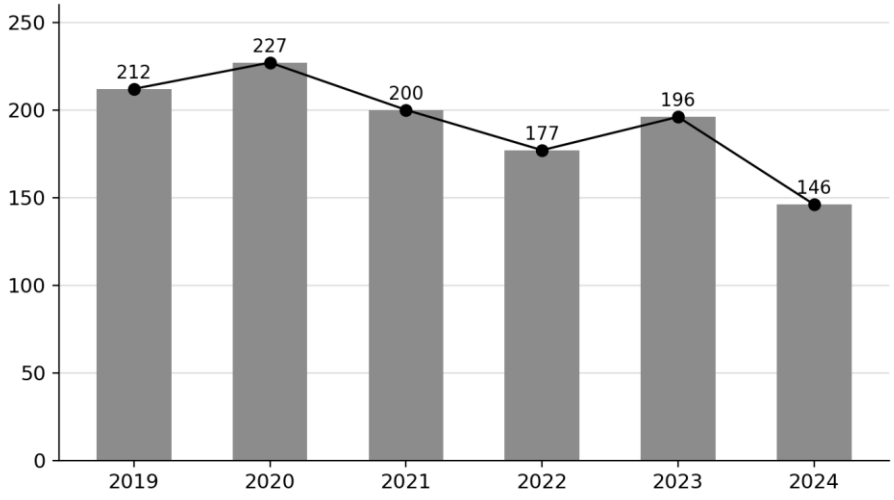
तालिका *1 :* चयनित कृतियाँ एवं उनमें पर्यावरणीय न्याय के प्रमुख विषय

कृति *(वर्ष)*	विधा	पर्यावरणीय न्याय संबंधी प्रमुख विषय
घोष, *The Great Derangement (2016)*	निबंध	जलवायु संकट के प्रति साहित्यिक कल्पना की विफलता; साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और जलवायु का संबंध; एशिया की असुरक्षा
घोष, *Gun Island (2019)*	उपन्यास	सुंदरबन क्षेत्र का संदर्भ, जलवायु-जनित प्रवासन एवं विस्थापित लोगों की असुरक्षा
घोष, *The Nutmeg's Curse (2021)*	वैचारिक गद्य	उपनिवेशवादी दोहन, संसाधनों की लूट और मूल निवासियों के प्रति हिंसा का इतिहास
संजीव, फाँस *(2015)*	उपन्यास	विदर्भ में किसानों की आत्महत्या, ऋण एवं कृषि-संकट
शेखर, *The Adivasi Will Not Dance (2015)*	कहानी-संग्रह	संथाल आदिवासी समुदाय की अस्मिता, विस्थापन एवं हाशिये का अनुभव
रॉय, *Broken Republic (2011)*	निबंध	मध्य भारत में खनन, आदिवासी भूमि और राज्य-हिंसा के प्रश्न

स्रोत : लेखक द्वारा चयनित कृतियों का विषयगत विश्लेषण।

साहित्यिक रूपों के संदर्भ में एक उल्लेखनीय बात यह है कि अधिकांश कृतियाँ पर्यावरणीय क्षति को किसी एक नाटकीय आपदा के रूप में नहीं, बल्कि दीर्घकालिक, संचयी प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती हैं। कर्ज़ में डूबे किसान, उजड़ते आदिवासी समुदाय और बदलते तटीय भूगोल वाले प्रवासी निक्सन *(2011)* की 'धीमी हिंसा' के उदाहरण बनकर उभरते हैं। साहित्यिक आख्यान इस हिंसा को व्यक्तियों के जीवन-अनुभव में बदलकर उसे पहचानने योग्य बनाते हैं। विश्लेषण में सहभागिता और मान्यता, अर्थात् किसकी आवाज़ सुनी जाती है, की कमी भी प्रमुख विषय दिखी।

सामाजिक आँकड़ों के संदर्भ में ग्लोबल विटनेस की रिपोर्टों के अनुसार भूमि एवं पर्यावरण रक्षकों की हत्या अथवा गुमशुदगी के दर्ज मामले *2019* में *212*, *2020* में *227*, *2021* में *200*, *2022* में *177* तथा *2023* में *196* रहे, जबकि *2024* में यह संख्या *146* दर्ज की गई *(*आरेख *1)*। इस प्रकार *2020* में सर्वाधिक संख्या के बाद गिरावट की प्रवृत्ति दिखाई देती है, यद्यपि *2023* में संख्या फिर बढ़ी। वर्ष *2012* से *2024* तक कुल दर्ज मामले कम से कम *2,253* रहे।



आरेख *1 :* भूमि एवं पर्यावरण रक्षकों की दर्ज हत्या/गुमशुदगी की संख्या, *2019–2024*

स्रोत : ग्लोबल विटनेस की वार्षिक रिपोर्टें (2019–2024 के आँकड़े)।

Copyright © 2026 the Author (s). This open access article is distributed under Creative Commons Attribution License 4.0 (CC BY).

इन आँकड़ों की व्याख्या सावधानी से करनी चाहिए। ग्लोबल विटनेस स्वयं बताता है कि उसके आँकड़े केवल प्रलेखित मामलों पर आधारित हैं और वास्तविक संख्या इससे अधिक हो सकती है। *2024* में कम संख्या का अर्थ यह नहीं कि सुरक्षा की स्थिति सुधर गई है; संघर्ष-क्षेत्रों में प्रलेखन की कठिनाई जैसे कारण भी भूमिका निभा सकते हैं। इसलिए कमी को सुधार का प्रमाण मानने के बजाय इसे एक सावधान संकेत के रूप में देखना उचित है।

एशिया और भारत के संदर्भ में ग्लोबल विटनेस की *2025* की रिपोर्ट के अनुसार *2012* से *2024* के बीच एशिया में कुल *485* रक्षक मारे गए या लापता हुए, जिनमें फ़िलीपींस *(306)* के बाद भारत *(87)* दूसरे स्थान पर है। वर्ष *2024* में कुल मामलों में से लगभग *82* प्रतिशत लैटिन अमेरिका में दर्ज हुए, तथा मूल निवासी समुदाय वैश्विक जनसंख्या के लगभग *6* प्रतिशत होकर भी लगभग एक-तिहाई घातक हमलों के शिकार रहे। इससे संकेत मिलता है कि पर्यावरणीय हिंसा का बोझ असमान रूप से वंचित एवं मूल निवासी समुदायों पर पड़ता है।

समग्र रूप से परिणाम तीन बातें स्पष्ट करते हैं। पहली, चयनित कृतियों में चित्रित विषय विस्थापन, भूमि-संघर्ष, कृषि-संकट और हाशिये की चुप्पी, सामाजिक आँकड़ों में दर्ज असमानता और हिंसा से मेल खाते हैं। दूसरी, साहित्य इस हिंसा को व्यक्तिगत अनुभवों के रूप में प्रस्तुत कर वह नैतिक एवं संवेदनात्मक आयाम देता है जो आँकड़ों में नहीं मिलता। तीसरी, पर्यावरणीय न्याय के तीनों आयाम, अर्थात् वितरण, सहभागिता और मान्यता, इन कृतियों में एक साथ सक्रिय दिखाई देते हैं।

चर्चा एवं निष्कर्ष

अध्ययन के परिणाम इस धारणा का समर्थन करते हैं कि साहित्य पर्यावरणीय न्याय के विमर्श में केवल सजावटी या सहायक भूमिका नहीं निभाता। निक्सन *(2011)* की 'धीमी हिंसा' की धारणा के अनुरूप, चयनित कृतियाँ वह क्षति दृश्य बनाती हैं जो नीतिगत भाषा में प्रायः 'विकास की लागत' या 'सांख्यिकीय आँकड़े' बनकर रह जाती है। घोष *(2016)* का यह तर्क कि साहित्यिक कल्पना को जलवायु-संकट के प्रति अधिक सजग होना चाहिए, इस अध्ययन में अनेक कृतियों की चिंता से मेल खाता है।

इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि साहित्य 'मान्यता' के आयाम पर विशेष योगदान देता है। श्लॉसबर्ग *(2013)* के अनुसार न्याय केवल वितरण या सहभागिता तक सीमित नहीं, बल्कि समुदायों की पहचान और अनुभव के सम्मान से भी जुड़ा है। संजीव और शेखर जैसे लेखक किसानों और आदिवासियों को केवल पीड़ित या आँकड़ा नहीं, बल्कि अपनी स्मृतियों, भाषा और अस्मिता वाले मनुष्यों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह चित्रण नीति-निर्माण में उपेक्षित आवाज़ों को सुनने की ज़रूरत की ओर ध्यान दिलाता है।

साथ ही साहित्य की सीमाओं को भी स्वीकार करना होगा। साहित्यिक पाठ प्रमाण के स्थान पर व्याख्या और अनुभव प्रस्तुत करते हैं, और उनकी पहुँच भी प्रायः सीमित पाठक-वर्ग तक रहती है। इसलिए साहित्य और सामाजिक विज्ञान को परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक माना जाना चाहिए। आँकड़े समस्या का विस्तार और प्रवृत्ति बताते हैं, जबकि साहित्य यह बताता है कि वह समस्या मनुष्यों के जीवन में कैसी अनुभूत होती है। शिक्षा, मीडिया और नीति-संवाद में दोनों को साथ रखना अधिक प्रभावी हो सकता है।

निष्कर्षतः साहित्य, समाज और पर्यावरणीय न्याय एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हैं। साहित्य सामाजिक असमानताओं से उत्पन्न पर्यावरणीय हिंसा का साक्षी बनता है, समाज-विज्ञान उसकी संरचना की व्याख्या करता है, और पर्यावरणीय न्याय का विमर्श दोनों को नैतिक दिशा देता है। भविष्य के अध्ययन अधिक भाषाओं और क्षेत्रीय साहित्य, पाठक-ग्रहण संबंधी सर्वेक्षणों तथा राज्यवार पर्यावरणीय संघर्षों के आँकड़ों को सम्मिलित करके इस संबंध को और व्यापक तथा अनुभवजन्य रूप से परख सकते हैं।

संदर्भ

1. आईपीसीसी *(2022). Climate Change 2022: Impacts, Adaptation and Vulnerability. Contribution of Working Group II to the Sixth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change.* कैम्ब्रिज *:* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. क्लार्क, टिमोथी *(2011). The Cambridge Introduction to Literature and the Environment.* कैम्ब्रिज *:* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. गैरार्ड, ग्रेग *(सं.) (2014). The Oxford Handbook of Ecocriticism.* ऑक्सफ़ोर्ड *:* ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. ग्लोबल विटनेस *(2024). Missing Voices: The Violent Erasure of Land and Environmental Defenders.* लंदन *:* ग्लोबल विटनेस।
5. ग्लोबल विटनेस *(2025). Roots of Resistance: Land and Environmental Defenders Annual Report.* लंदन *:* ग्लोबल विटनेस।

Copyright © 2026 the Author (s). This open access article is distributed under Creative Commons Attribution License 4.0 (CC BY).

6. घोष, अमिताव *(2016). The Great Derangement: Climate Change and the Unthinkable.* शिकागो *:* यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस।
7. घोष, अमिताव *(2019). Gun Island.* लंदन *:* जॉन मरे।
8. घोष, अमिताव *(2021). The Nutmeg's Curse: Parables for a Planet in Crisis.* लंदन *:* जॉन मरे।
9. डीलॉफ़्री, एलिज़ाबेथ एवं हैंडली, जॉर्ज बी. *(सं.) (2011). Postcolonial Ecologies: Literatures of the Environment.* ऑक्सफ़ोर्ड *:* ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. निक्सन, रॉब *(2011). Slow Violence and the Environmentalism of the Poor.* कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स *:* हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. पुलिडो, लौरा *(2017). "Geographies of Race and Ethnicity II: Environmental Racism, Racial Capitalism and State-Sanctioned Violence." Progress in Human Geography, 41(4), 524–533*।
12. बाविस्कर, अमिता *(2020). Uncivil City: Ecology, Equity and the Commons in Delhi.* नई दिल्ली *:* सेज पब्लिकेशंस।
13. मार्टिनेज़-आलियर, जोआन*;* टेम्पर, लिआ*;* डेल बेने, डैनिएला*;* शाइडेल, अर्निम *(2016). "Is There a Global Environmental Justice Movement?" Journal of Peasant Studies, 43(3), 731–755*।
14. रंगराजन, महेश एवं शिवरामकृष्णन, के. *(सं.) (2012). India's Environmental History.* नई दिल्ली *:* परमानेंट ब्लैक।
15. रॉय, अरुंधति *(2011). Broken Republic: Three Essays.* नई दिल्ली *:* हैमिश हैमिल्टन *(*पेंगुइन इंडिया*)*।
16. व्हाइट, काइल पॉविस *(2018). "Settler Colonialism, Ecology, and Environmental Injustice." Environment and Society, 9(1), 125–144*।
17. वॉकर, गॉर्डन *(2012). Environmental Justice: Concepts, Evidence and Politics.* लंदन *:* रूटलेज।
18. शाइडेल, अर्निम एवं अन्य *(2020). "Environmental Conflicts and Defenders: A Global Overview." Global Environmental Change, 63, 102104*।
19. शेखर, हंसदा सौवेंद्र *(2015). The Adivasi Will Not Dance: Stories.* नई दिल्ली *:* स्पीकिंग टाइगर।
20. श्लॉसबर्ग, डेविड *(2013). "Theorising Environmental Justice: The Expanding Sphere of a Discourse." Environmental Politics, 22(1), 37–55*।
21. श्लॉसबर्ग, डेविड एवं कॉलिन्स, लिसा बी. *(2014). "From Environmental to Climate Justice: Climate Change and the Discourse of Environmental Justice." WIREs Climate Change, 5(3), 359–374*।
22. संजीव *(2015).* फाँस*.* नई दिल्ली *:* वाणी प्रकाशन।
23. हाइज़, उर्सुला के*. (2016). Imagining Extinction: The Cultural Meanings of Endangered Species.* शिकागो *:* यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस।
24. ह्यूगन, ग्राहम एवं टिफ़िन, हेलेन *(2015). Postcolonial Ecocriticism: Literature, Animals, Environment (*द्वितीय संस्करण*).* लंदन *:* रूटलेज।

Copyright © 2026 the Author (s). This open access article is distributed under Creative Commons Attribution License 4.0 (CC BY).